International Journal of Sanskrit Research 2014; 1(1): 51-54

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2014; 1(1): 51-54
© 2014 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 13-09-2014
Accepted: 17-10-2014

डॉ. अशोक कुमार दुबे
एसोशिएट प्रोफेसर–संस्कृत
बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ,
उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ. अशोक कुमार दुबे
एसोशिएट प्रोफेसर–संस्कृत
बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ,
उत्तर प्रदेश, भारत

भक्तिविशारदा शबरी

डॉ. अशोक कुमार दुबे

सारांश
भक्तिशास्त्र में भक्ति के अनेक अंग और उपांगों का वर्णन किया गया है। पराभक्ति में भक्त भगवान के प्रति पूर्ण समर्पण–भाव रखता है। पूरी तरह परमात्मा की सत्ता पर आश्रित रहना और प्रत्येक सम–विषम परिस्थिति में ईश्वर का उपकार मानना पराभक्ति है। शास्त्रीय दृष्टि से इसमें ''मार्जरन्याय'' की भक्ति होती है। मार्जार बिल्ली को कहते हैं। बिल्ली का बच्चा अपने आपको पूरी तरह माँ (बिल्ली) को सुपुर्द कर देता है। अपने जीवन का कोई भी उपकार नहीं करता। बिल्ली मुँह में दबाकर लटकते हुए बच्चे को जहाँ चाहती है, ले जाती है। मार्जार न्याय की भक्ति पूर्ण समर्पण या पराभक्ति है। दूसरी ओर, गौणी भक्ति में मनुष्य परमात्मा के परम गुणों में आसक्ति रखते हुए, उनकी प्राप्ति के लिए स्वयं भी प्रयत्नशील होता है। शास्त्रीय दृष्टि से गौणी भक्ति को ''मर्कट–न्याय'' कहा जा सकता है। मर्कट का अर्थ बन्दर होता है। बन्दरिया का बच्चा माँ (बन्दरिया) से चिपकता है, अपने चारों हाथों पाँवों की मदद से वह बन्दरिया के पेट से लटका रहता है तथा बन्दरिया भी उछलते–कूदते एक हाथ से उेस सहारा दिए रहता है। स्पष्ट है कि मर्कट न्याय पूर्ण समर्पण न होकर दो तरफा कोशिश का परिणाम है। ''परा'' तथा ''गौणी'' भक्ति में यही अन्तर है–एक समर्पण या पूरी तरह परमात्मा की शरण लेने को कहते हैं, तो दूसरे अर्थात् गौणी भक्ति की अपनी कोशिशों–भजन, पाठ, कर्म आदि को भी स्वीकार करती है। गौणी भक्ति के भी दो भेद हैं– 1. वैधी भक्ति, 2. रागात्मिका भक्ति। इसमें वैधी भक्ति 9 प्रकार की है, जिसे नवधाभक्ति कहते हैं और रागात्मिका भक्ति 14 प्रकार की मानी गयी है। गुरु के उपदेश के अनुसार विधि निषेध के अधीन होकर जो साधन किया जाय उसी को वैधी भक्ति कहते हैं। वह 9 प्रकार की होती हैं–
श्रवणं कीर्तनं विष्णो स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं संख्यात्मनिवेदनम्।
इति पुंसतर्पिता विष्णौ भक्तिचेन्नवलक्षणा।
श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन वैधी भक्ति के यही प्रभेद कहे गये हैं।

मुख्य शब्दः नवधा भक्ति, दास्य, श्रवणात्मिका, सख्य आदि

प्रस्तावना
संस्कृत वाङ्मय में भक्ति का महत्व विशद रूप में दृष्टिगोचर होता है। हमारे शास्त्रों में भक्ति का अभिप्राय ईश्वर के प्रति अतीव प्रेम और श्रद्धा से है। भक्ति की महिमा का प्रकाशन करते हुए सभी शास्त्र एक स्वर में कहते हैं कि भक्ति संसार सागर में दुःखाग्नि से दग्ध हृदय को शान्ति देने के लिए अमृत की तरंगिणी है। शाण्डिल्य भक्ति सूत्र में भक्ति की परिभाशा देते हुए कहा गया है, ''परानुरक्ति ईश्वरे सः भक्ति''। भाव यह है कि परमात्मा के लिए मन में परम अनुराग या प्रेम का उत्पन्न होना ही भक्ति है। भक्ति के समान भगवान् को कुछ भी प्रिय नहीं है। भगवान् ने नारद जी से स्वयं कहा है कि न तैं मैं बैकुण्ठ में रहता हूँ, न योगियों के हृदय में ही निवास करता हूँ, किन्तु मेरे भक्त जहाँ मेरा गुणगान करते हैं वहाँ ही मैं रहता हूँ–

नाहं वसामि बैकुण्ठे योगिनां हृदयेन च।
भद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।।

भक्ति भगवान् को प्राण से भी अधिक प्रिय है। भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् नीचों के घर में भी चले जाते हैं–

त्वं तु भक्ते प्रिया तस्य सततं प्राणतोऽधिका।
त्वायाहूतस्तु भगवान् याचि नीच ग्रहेष्वपि।।

भक्तिशास्त्र में भक्ति के अनेक अंग और उपांगों का वर्णन किया गया है। पराभक्ति में भक्त भगवान के प्रति पूर्ण समर्पण–भाव रखता है। पूरी तरह परमात्मा की सत्ता पर आश्रित रहना और प्रत्येक सम–विषम परिस्थिति में ईश्वर का उपकार मानना पराभक्ति है। शास्त्रीय दृष्टि से इसमें ''मार्जरन्याय'' की भक्ति होती है। मार्जार बिल्ली को कहते हैं। बिल्ली का बच्चा अपने आपको पूरी तरह माँ (बिल्ली) को सुपुर्द कर देता है। अपने जीवन का कोई भी उपकार नहीं करता। बिल्ली मुँह में दबाकर लटकते हुए बच्चे को जहाँ चाहती है, ले जाती है। मार्जार न्याय की भक्ति पूर्ण समर्पण या पराभक्ति है। दूसरी ओर, गौणी भक्ति में मनुष्य परमात्मा के परम गुणों में आसक्ति रखते हुए, उनकी प्राप्ति के लिए स्वयं भी प्रयत्नशील होता है। शास्त्रीय दृष्टि से गौणी भक्ति को ''मर्कट–न्याय'' कहा जा सकता है। मर्कट का अर्थ बन्दर होता है। बन्दरिया का बच्चा माँ (बन्दरिया) से चिपकता है, अपने चारों हाथों पाँवों की मदद से वह बन्दरिया के पेट से लटका रहता है तथा बन्दरिया भी उछलते–कूदते एक हाथ से उेस सहारा दिए रहता है। स्पष्ट है कि मर्कट न्याय पूर्ण समर्पण न होकर दो तरफा कोशिश का परिणाम है। ''परा'' तथा ''गौणी'' भक्ति में यही अन्तर है–एक समर्पण या पूरी तरह परमात्मा की शरण लेने को कहते हैं, तो दूसरे अर्थात् गौणी भक्ति की अपनी कोशिशों–भजन, पाठ, कर्म आदि को भी स्वीकार करती है। गौणी भक्ति के भी दो भेद हैं– 1. वैधी भक्ति, 2. रागात्मिका भक्ति। इसमें वैधी भक्ति 9 प्रकार की है, जिसे नवधाभक्ति कहते हैं और रागात्मिका भक्ति 14 प्रकार की मानी गयी है। गुरु के उपदेश के अनुसार विधि निषेध के अधीन होकर जो साधन किया जाय उसी को वैधी भक्ति कहते हैं। वह 9 प्रकार की होती हैं–

श्रवणं कीर्तनं विष्णो स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं संख्यात्मनिवेदनम्।
इति पुंसतर्पिता विष्णौ भक्तिचेन्नवलक्षणा।[1]

श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन वैधी भक्ति के यही प्रभेद कहे गये हैं।

1. श्रवणात्मिका भक्ति
गायन मम यशो नित्यं भक्त्या परमायुतः।
मत्यप्रसादात् स शुद्धास्तथा मम लोकायगच्छति।।[2]
गीयमानस्य गीतस्य यावद्क्षरपड्क्तयः।
तावद् वर्ष सहस्त्राणि इन्द्रलोके महियते।।[3]

उत्तम भक्ति से युक्त होकर नित्य निरन्तर मेरे यश का गान करता हुआ मेरा भक्त शुद्ध अन्तःकरण वाला होकर मेरे कृपा प्रसाद से मेरे लोक को प्राप्त होता है।

2. संकीर्तनात्मक भक्ति
श्री भगवान् के मधुर चरित्र–समूह के कीर्तन का नाम ही कीर्तन भक्ति है। भगवान् नाम संकीर्तन से पाप क्षय की उद्घोषणा करते हुए भगवान वाराह कहते हैं।

अभक्ष्य भक्षणात् पापगम्यागमनाच्च तत्। नश्नेनात्र संदेहो गोविन्दस्य च कीर्तनात्। स्वर्णस्तेयं सुरावानं गुरुदाराभिदर्शनम्। गोविन्दगीतनात् सघः पायो याति महामुने।। तावत्तिष्ठति देहेऽस्मिन् कलिकल्मष्सम्भवः। गोविन्दकीर्तनं यावत् कुरुते मानवो हि।। महामुने। अभक्ष्य–भक्षण और जगभयागमन से जो पाप होता है, वह गोविन्द नाम के संकीर्तन से नष्ट हो जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं है। सोने की चोरी, सुरापान आदि पाप गोविन्द नाम के संकीर्तन से तत्कालीन क्षीण हो जाता है। इस शरीर में कलियुगजनित पाप पुण्य तभी तक टिकता है, जब तक मानव ''गोविन्द'' नाम का कीर्तन नहीं करता। नाम संकीर्तन पापक्षयमात्र ही नहीं करता, अपितु तत्काल मुक्ति प्रदान करके अपनी विशिष्टता प्रमाणित करता है। जिसमें ''हरि'' इन दो अक्षरों का एक बार भी उच्चारण कर लिया, उसने तो मानो मोक्षधाम में जाने के लिए सीढ़ी ही बाँध ली।

3. स्मरणात्मिका भक्ति
भगवान् के मधुर मूर्ति की स्मरण को स्मरण भक्ति कहते हैं– दयांजलांजलि मत्यं तेन प्रतिरूत्तमा। तस्य किं सुमनोमिश्च जाप्यते नियमेन किम्।। महयं चिन्तमतो नित्यं निभृतेनान्तरात्मन तस्यकामान् प्रयच्छामि दिव्यान् भोगान्यनोरमान्।।[4] जो भक्त अनन्यचित होकर अपने सम्पूर्ण अन्तःकरण से सदा–सर्वदा मेरा चिन्तन करता है। वह मुझे जलांजलि भी प्रदान करे, तो मुझे बड़ा सन्तोष होता है। ऐसे मेरे भक्ति को पुण्यों से, जप से या ब्रह्म के नियमों के पालन से क्या लेना–देना है? उस भक्त को प्रसन्न होकर मैं स्वयं ही मनोरम दिव्य भोग और पथाभिलाषित द्रव्य–सामग्री प्रदान करता हूँ।

4. पादसेवात्मिका भक्ति
भगवान के चरण कमल की सेवा का नाम पाद सेवन भक्ति है। भगवत् परिचर्चा, श्री भगवान् को चँवर डालना, उसके निमित्त पर्वमहोत्सव इत्यादि रूप पादसेवनभक्ति का प्राप्त होता है। इसी के अन्तर्गत प्रबोधनोत्सव का वर्णन प्राप्त होता है कि– सर्वलोक वन्दनीय जगन्नाथ, ब्रह्मा एवं रूद्र रूप आपकी स्तुति करते हैं। यह आपकी द्वादशी तिथि आकर प्राप्त हो गयी है। आप प्रबोध की प्राप्त होइये। इस समय आकाश मेघों से युक्त होकर पूर्ण चन्द्र की किरणो ंसे आलोकित हो रहा है। मैं आपको शरत्काल में विकसित होने वाले पुष्प समर्पित करता हूँ।

5. अर्चनात्मिका भक्ति
हृदय में मनोमयी मूर्ति की कल्पना कर बाह्य और मानस पूजा का नाम अर्चन भक्ति है। भक्ति के साधक इस प्रकार पूजा करने से भगवान् को प्रसन्नता होती है, जिसमें हृदय में धीरे–धीरे भगवत्–भाव का उदय होने लगता है। भगवान् के पूजन से मनुष्यों को स्वग्र, मोक्ष एवं विश्व की समस्त सिद्धियाँ मिल जाती हैं। भगवान् के चरण कमलों की पूजा सभी प्रकार की सिद्धियों की प्राप्ति का मूल कारण हैं भगवान् की पूजा से मनुष्यों को स्वर्ग, मोक्ष एवं विश्व की समस्त प्राप्ति का मूल कारण है। भगवान् की पूजा से भगवत् प्राप्ति होती हैं, उसकी घोषणा स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में इस प्रकार की है–

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिद्र ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यच्च सिद्धिं विन्दति मानवः।।

6. वन्दनात्मिका भक्ति :–
श्री भगवान् के चरण कमलों की वन्दना का नाम वन्दन भक्ति है, जिसके द्वारा भक्त के हृदय में अहंकार नाम और भगवद्भाव का उदय होता है–

सकोऽपि ..... न पुनर्भवाय।

भगवान् श्रीकृष्ण को किया हुआ एक भी प्रणाम देश अश्वमेध यज्ञों के अमृत स्थान के बराबर पुण्यप्रद है। दश अश्वमेध करने वाले को तो फिर जन्म लेना पड़ता है। किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण को प्रणाम् करने वाले को तो फिर से जन्म नहीं लेना पड़ता है। श्रद्धापूर्वक

भगवान् को प्रणाम करने वालों की तो बात ही क्या है, किसी भी अवस्था में भगवान् को प्रणाम करने से सब पाप नाश हो जाता है।

7. दास्य भक्ति

दास्य का अर्थ है–क्रिया द्वेत अर्थात् जिस प्रकार लोक में दान की समस्त क्रियायें स्वामी के लिए होती हैं, अपने लिए नहीं, उसी प्रकार दास्य भक्ति का उपासक केवल भगवद् कर्म करता है। भगवान् वाराह ऐसे भक्त के लिए कहते हैं–

कर्मणामनसावाचामच्चितो यो नरोभवेत्।
तस्य ब्रतानि वक्ष्येऽहं विविधानि निबोधमे।।
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं प्रकीर्तितम्।
एतानि मानसान्याहश्रृतानि तु धराधरे।।
एक भुक्तं नक्तमुपवासारिदं च यत्।
तत्सर्वं कायिकं पुतां व्रतं भवति न्यान्यथा।।
देवस्याध्ययनं विष्णोः कीर्तनं सतयभाषणम्।
अवेशुन्यं हितं धर्मं वाचिकं व्रतमुत्तमम्।।

मन–कर्म और वचन से जो म नुष्य मेरे पारायण हो जाता है। उसके लिए विविध व्रतों को बतलाता हूँ। अहिंसा, सत्य, अस्तेय एवं ब्रह्मचर्य ये मानस व्रत कहे गये हैं। उपवास आदि को कायिक व्रत कहा गया है। ये कभी व्यर्थ नही जाते। वेदों का स्वाध्याय, श्रीहरि का संकीर्तन, सत्यभाशण, किसी की चुगली न करना, परोपकार ये वाणी के व्रत हैं।

8. सख्य भक्ति

गवान् के प्रभाव, तत्व, रहस्य और महिमा को समझकर परम विश्वासपूर्वक मित्र भाव से उनकी रूचि के अनुसार बन जाना, उनमें अनन्य प्रेम रखना गुण, रूप और लीला पर मुग्ध होकर नित्य निरन्तर प्रसन्न रहना सख्य भक्ति है–

कृष्णं क्रीड़ा सेतुबन्धं महापातकनाशनम्।
बलानां क्रीडामार्थ च कृत्वा देवो गदाधरः।।
गोपकैः सहितस्त्र क्षणमेकं दिने–दिने
तत्रैव रमवार्थ हि नित्यकाले च गच्छति।।
बलिइदं च तत्रैव अलक्रीड़ाकृतं शुभम्।
यस्य सन्दर्भनादेव सर्वपापैः प्रमुच्यते।।

भगवान् गदाधर ने अपने साथी ग्वालबालों के लिए जो कृष्ण क्रीड़ा सेतुबन्ध की रचना की थी। जहाँ वे गायों के साथ प्रतिदिन मुहूर्तभर खेला करते थे और वे रमण के लिए अब भी नित्य जाते हैं, वह स्थान महापातकों को भी नाश करने वाला है। वहीं पर बलिहद नामक सुन्दर सरोवर हैं, जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण ने जल–क्रीड़ा की थी, उसके दर्शनमात्र से ही मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है।

9. आत्मनिवेदनात्मिका भक्ति

इस भक्ति में भक्त की शरीर तथा मानसिक चेष्टायें भगवदभावमयी हो जाती हैं। जिसके कारण भक्त के हृदय में भगवान् के प्रति अपूर्व अनुराग का विकास हो जाता है। नवधाभक्ति की प्रतिमूर्ति स्वरूप भक्तिविशारदाशबरी अनन्य भक्ति की पराकाष्ठा को प्राप्त कर सौहार्द युक्त अपने जीवन को सम्पूर्ण चराचर के लिए सार्थक योगदान करती रही। अनन्य भक्ति का तात्पर्य है कि अपने इष्ट में मन, वचन, कर्म से लीन हो जाना। शबरी एक रामायणकालीन जाति की स्त्री थी। अध्यात्मरामायण में शबरी के माध्यम से शबर जाति का परिचय कराया गया है। यद्यपि कि शबरी एक अनार्य जाति की स्त्री थी, जो पूर्णतः आर्य संस्कृति से प्रभावित थी। इसने पारलौकिक सुखप्राप्ति हेतु अरण्यवास करते हुए तपो मार्ग का अवलम्बन किया था। श्रीराम्–लक्ष्मण की इस तपस्विनी से भेंट तब होती है, जब वे सीता की खोज करते–करते पम्पा सरोवर के निकट मतंगवन में स्थित शबरी के आश्रम में पहुँचते हैं–

व्यक्त्वा तद्विपिनं घोरं सिंहव्याघ्रादिदूषितम्।
शनैरथाश्रमपदं शबर्या रघुनन्दनः।।[5]

आर्येतर जाति के होने के पश्चात् भी शबरी को समाज में सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाता था। इसका प्रमाण इसी संदर्भ में परिलक्षित होता है कि राम भी शबर जाति की शबरी के आरम में सहर्षपूर्वक जाते हैं तथा शबरी से मिलते हैं। शबरी सिद्ध तपस्विनी थी। उन दोनों भाइयों को आश्रम पर पधारे देख सहर्ष हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी तथा उनके चरणों में प्रणाम अर्पित की–

शबरी राममालोकय लक्ष्मणेन समन्वितम्।
आयान्तमाराद्धर्षेण प्रत्युत्थायाचिरेण सा।।[6]

शबरी अत्यन्त संस्कारी स्त्री थी। शबरी के हृदय में किसी के प्रति ओर किसी भी प्रकार का छल–कपट, भेदभाव नहीं था। वह आत्मज्ञानी थी, परमकल्याण का मार्ग किस प्रकार प्रशस्त होगा, उससे बहुविधि अवगत थी। स्वयं श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता में कहते हैं कि स्त्री, वैश्य, शूद्रादि तथा जो कोई पापयोनि वाले भी हों वे मेरे आश्रित होकर परमगति को प्राप्त करते हैं।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियों वैश्यस्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।।[7]

परमगति को प्राप्त करना शबरी के जीवन का मूलोद्देश्य था। भगवान् को प्रणाम करने के पश्चात् पाद्य, अर्ध्य और आचमनीय आदि सम्पूर्ण सामग्री समर्पित कर उनका विधिवत् सत्कार भी करती है–

रामलक्ष्मणयोः सम्पक्वपादौ प्रक्षाल्य भक्तितः।
तज्जलेनाभिषिच्याङ्गमथार्ध्या दिभिराहता।।[8]
सम्पूज्यं विधिवद्रामं ससौमित्रि समर्पया।
सङ्गृहीतानि दिव्यानि रामार्थ शबरी मुदा।।
फलान्यमृतकल्पानि ददौ रामाय भक्तितः।
पादौ सम्पूज्य कसमैः सुगन्धै सानुलेपनैः।।[9]

श्रीराम भी शबरी के श्रद्धा–भक्ति को देखकर अत्यन्त हर्षित थे। आध्यात्मिक पथ सर्वोच्च मार्ग होता है। भक्ति की पराकाष्ठा पर पहुँचकर अभिलाषाओं से मुक्त हो जाता है। श्रीरामचन्द्र के पूछने पर सिद्ध तपस्विनी शबरी, जो सिद्धों के द्वार सम्मानित थी, उनके समक्ष खड़ी होकर बोली–

अद्य प्राप्ता तपः सिद्धिस्तव संदर्शनाम्मया।
अद्य में सफलं जन्म गुरवश्च सुपूजिताः।।[10]

यहाँ स्पष्ट रूप से यह विदित होता है कि ईश्वर के दर्शन मात्र से समूल पाप विनष्ट हो जाता है। साक्षात् परब्रह्म परमात्मा शबरी के समक्ष समुपस्थित थे। शबरी को पूर्ण विश्वासथा कि अब मेरा जनम तथा कर्म दोनों सार्थकता को प्राप्त हो गया। ईश्वर के दर्शन से जीव की शोकनिवृत्ति हो जाती हैं शबरी इस तत्वज्ञान को भली–भाँति जानती थी कि–''एक वृक्ष पर रहने वाला जीवन अपने दीनस्वभाव के कारण मोहित होकर शोक करता है। वह जिस समय ध्यान द्वारा अपने से विलक्षण योगसेवित ईश्वर और उसकी महिमा को देखते हैं। उस समय शोकरति हो जाता है''–

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुझमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीश मस्य महिमानमिति वीतशोकः।।[11]

शबरी का अन्तःकरण निर्मल था। उसका समग्र दर्शन आचार से परिशुद्ध एवं संस्कारयुक्त था। सचरित्रा अपने इस तपस्या के मूलभूत आधार गुरु मतंग के विषय में श्रीराम से कहती हैं–

अत्राश्रमे रघुश्रेष्ठ गुरवो में महर्षयः।
स्थिताः शुश्रुषणां तेषां कुर्वती समुपस्थितम्।।
बहुवर्षसहस्त्राणि गतास्ते ब्रह्मणः पदम्।
गमिष्यन्तोऽब्रुवन्मां तवं वसौत्रैवे समाहिता।।[12]

नीचकुलोत्पन्ना शबरी गुरु कृपा से जीवन में भक्ति की पराकाष्ठा को प्राप्त की। वास्तव में भक्ति के मार्ग में पुरुषत्व–स्त्रीत्व का भेद नहीं होता। भगवान् श्रीराम कहते हैं कि जाति, नाम और आश्रम मेरे भजन के कारण नहीं है। उनका एकमात्र कारण भक्ति ही है–

पुंस्तवे स्त्रीत्वे विशेषो वा जातिनामाश्रमादयः।
न कारणं मद्भजने भक्तिरेव हि कारणम्।।
यज्ञदानतपोभिर्वा वेदाध्ययनकर्मभिः।
नैव द्रष्टुमहं शक्यो मद्भक्तिविमुखैः सदा।।[13]

समाज के सभी प्राणियों को एक दृष्टि से देखना तथा श्रेष्ठ व्यवहार करना, प्रीति भाव रखता, सद्भावयुक्त व्यवहार करना भी भक्ति का मार्ग है। शबरी लोकोपकार के गुणधर्म से युक्त थी, जिसके कारण प्रभु उसके आश्रम स्वयं पधारे थे। शबरी भक्ति में लीन होने के पश्चात् भी सामाजिक गतिविधियों पर भी ध्यान आकृष्ट रखती थी, जिसके कारण सीता के हरण के विषय में भी जानती थी कि रावण ने ही सीता का हरण किया है। शबरी श्रीराम से पम्पा नामक सरोवर के विषय में वर्णनोपरान्त ऋष्यमूल पर्वत के संदर्भ में बताती है–

दूतः समीपे रामस्ते पम्पानाम सरोवरम्।
ऋष्यमूकगिरिर्नाम तत्समीपे महागमः।।

शबरी निश्च्दल, निष्कपट भाव से रघुनन्दन को सीता के खोज के लिए सुलभ मार्ग प्रशस्त करती है। अपने सभी कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए स्वच्छ श्रेष्ठ भाव से शबरी अपने गुरु के कथनानुसार अपना सम्पूर्ण जीवन तपस्या में समर्पित कर बैठती है तथा कहती है कि जिनका यह आश्रम है और जिनके चरणों की मैं दासी रही हूँ, उन्हीं पवित्रात्मा महर्षियों के समीप अब मैं जाना चाहती हूँ–

तेषामिच्छाम्य हं गन्तुं समीपं भावितात्मनाम्।
मुनीनामश्रमो येषामहं च परिचारिणी।।[14]

शबरी के इस प्रकार श्रेष्ठ विचार को देखकर एवं सुनकर रघुनन्दम् तथा लक्ष्मण को अनुपम प्रसन्नता हुई। श्रीराम भी आश्चर्यचकित हो गये कि नीचकुलोत्पन्न का विचार अतीव सुन्दर, मनोहर श्रेष्ठ ग्राह्य है। इस प्रकार के विचार तो उच्चकुलोत्पन्न पुरुष में भी दुर्लभ होता है। शबरी कठोर व्रत का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करती थी। श्रीराम शबरी से अत्यन्त प्रसन्न होकर कहे कि भद्रे! तुमने मेरा सत्कार किया है। अब तुम अपनी इच्छानुसार आनन्दपूर्वक अभीष्ट लोक की यात्रा करो–

तमुवाच ततो रामः शबरी संशितव्रताम्।
अर्चितोऽहं त्वया भद्रगच्छ कामं यथासुखम्।।[15]

शबरी के जीवन में केवल धर्म, कर्म, सद्भाव ही प्रकट होता है। स्पष्ट होता है कि व्यक्ति का विचार उसको परम पद भी प्राप्त करा देता है। मानव जन्म लेना श्रेष्ठता की बात नहीं है बल्कि मानवता के गुण का होना सबसे बड़ी बात है। यद्यपि कि शबरी शबर जाति की स्त्री थी। शबर जाति का प्रतिनिधितव करने वाली जाति आज भी मध्य प्रदेश की पहाड़ियों में निवास करती हैं। वैदिक साहित्य में शबर जाति को दस्युओं के रूप में, आहनों, पुलिन्दों और पुण्ड्रों के साथ वर्गीकृत किया गया है।[16] उत्तरवैदिक काल में अन्त तथा रामायण काल में यह एक जंगली जाति के रूप में मान्यता प्राप्त कर चुकी थी। आखेट इनका मुख्य व्यवसाय था। लेकिन शबरी सद्भाव के कारण ही सद्गति को प्राप्त थी। उसका सम्पूर्ण कर्मभाव श्रेष्ठ था। शबरी स्नेह, सन्तोष और सद्भाव से युक्त थी। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि भक्ति विशारदा शबरी श्रेष्ठ भक्ति की प्रतिमूर्ति थी।

सन्दर्भ

1. श्रीमद्भगवद्, 7/5/23
2. वा.पु., 139/24
3. वा.पु., 139/28
4. वा.पु., 183/12–13
5. अ.रा./अ.का./4
6. अ.रा./अ.का./5
7. भ.गी./अ. 9/32
8. अ.रा./अ.का./6
9. अ.रा./अ.का./8–9
10. वा.रा./अ.का./11
11. मु.उ./ख.1/मं–2
12. अ.रा./अ.का./11–12
13. अ.रा./अ.का./20–21
14. वा.रा./अ.का./129
15. वा.रा./अ.का./31
16. ऐ.ब्रा. 6/18/2